मीठी-मीठी कहानियाँ

आशारानी व्होरा



मीठी-मीठी कहानियाँ



आशारानी व्होरा

ज्ञान गंगा, दिल्ली

अनुक्रमणिका

शीर्षक | पृष्ठ

प्रकाशक : ज्ञान गंगा, 205-सी चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006

/ संस्करण : 2004 / मूल्य : अठारह रुपए
मुद्रक : नरुला प्रिंटर्स, दिल्ली ISBN 81-85829-73-X

MEETHI-MEETHI KAHANIYAN
by Smt. Asha Rani Vhora Rs. 18.00
Published by Gyan Ganga, 205-C Chawri Bazar, Delhi-110006

डबलरोटी की कहानी

डबलरोटी आज हमारे रोज के नाश्ते का अंग है। छोटे-बड़े सभी इसे चाव से खाते हैं— कई तरीकों से स्वादिष्ट बनाकर, सजाकर। डबलरोटी को पावरोटी भी कहा जाता है।

मक्खन टोस्ट, आमलेट टोस्ट, टमाटर-खीरे-चटनी का सैंडविच, ब्रेड पकौड़ा और ब्रेड बोंडा, ब्रेड केक और ब्रेड मिठाई आदि। इन कई रूपों में माँ जब तुम्हें इस तरह बना-सजाकर डबलरोटी खाने को देती हैं तो तुम कितने खुश होते हो! होते हो न?

तब तुम इसकी कहानी भी जरूर जानना चाहोगे। आओ, आज तुम्हें डबलरोटी की कहानी सुनाएँ। इस डबलरोटी का इतिहास बताएँ, जिसका उपयोग आज सारे संसार में होता है।

जर्मनी में एक 'रोटी संग्रहालय' है। इस संग्रहालय में डबलरोटी की छः सौ के लगभग किस्में रखी गई हैं। तरह-तरह के केक और बिस्कुट भी। तरह-तरह के डिजाइनों में। ये सभी डिजाइन बहुत पुराने हैं। किसीका नमूना आदमी जैसा है, किसीका जानवर जैसा और किसीका मकान जैसा।

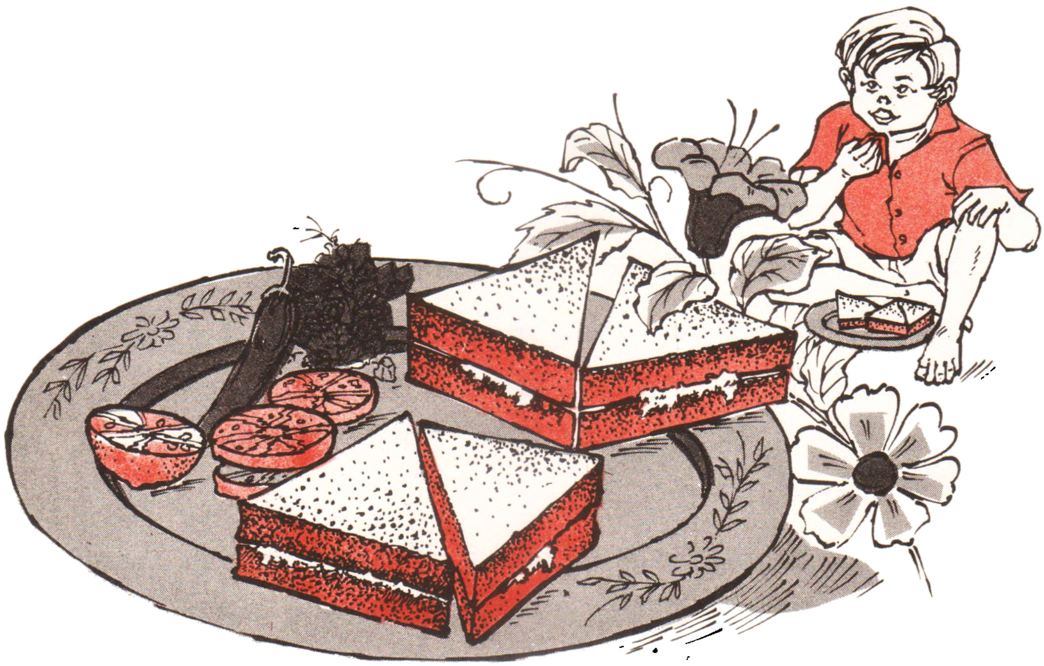
बिली आइजलीन ने इसकी स्थापना सन् 1955 में की थी। नाम रखा गया—'जर्मनी बेकरी म्यूजियम'। इस संग्रहालय को देखने हर वर्ष दुनिया के सभी देशों से लाखों लोग आते हैं।

बेशक संग्रहालय की स्थापना नई हो, पर इसमें दिखाया गया डबलरोटी का इतिहास बहुत पुराना है। संग्रहालय में रखी गई डबलरोटियों के नमूनों और उनके दस्तावेजों से पता चलता है कि डबलरोटी का इतिहास लगभग पाँच हजार साल पुराना है। ईसा से तीन हजार साल पहले मिस्र में लोगों ने पहली बार डबलरोटी खाई। पहले मिस्र के राजघराने ने शुरुआत की, फिर यह सभी लोगों की पसंद बनती गई।

अब तुम जानने के लिए उत्सुक होगे कि आखिर इसकी शुरुआत हुई कैसे?

मिस्र के राजघराने की रसोई में एक दिन एक मजेदार घटना घटी। एक रसोइए ने भूल से बासी आटे की रोटी बना ली। गुँधा हुआ आटा लगभग बारह घंटे तक यूँ ही पड़ा रह गया था। जब उसकी रोटी बनाई गई तो वह फूलकर मोटी हो गई। रसोइए को पहले डाँट पड़ी। फिर जब उस रोटी को चखकर देखा गया तो वह सभी को स्वादिष्ट लगी। बस, यहीं से खमीर उठाने की और डबलरोटी बनाने की बात शुरू हो गई।

फिर तो खुशी के खास अवसरों पर इस खमीरे आटे से तरह-तरह की नमकीन और मीठी डबलरोटियाँ तैयार की जाने लगीं। इसी तरह प्रयोग करते-करते बेकरी का विकास हुआ और आज की डबलरोटी का रूप सामने आया।



डबलरोटी बनाने के लिए पहले मैदा में खमीर उठाया जाता है। यह खमीर एक तरह की फफूँद से तैयार होता है। मैदा में खमीर मिलाकर उसे गूँध लिया जाता है। फिर बड़े-छोटे आकार में बेलकर, डबलरोटी बनाकर उसे भट्ठी या ओवन में सेंक लिया जाता है। खमीर के कारण सिंकते समय बुलबुले उठते हैं और आटे में छेद-छेद जैसे बन जाते हैं। इसीलिए

डबलरोटियों में छेद पाए जाते हैं और वे खूब फूली हुई होती हैं।

अब तो डबलरोटियाँ बनाकर बाजार में बेचनेवाली बड़ी-बड़ी कंपनियाँ हैं। इसकी अधिक पसंद और भारी खपत के कारण ही इसका व्यापार और कारोबार खूब चल पड़ा है।

खपत क्यों न हो भला! तुम्हारे पापा-मम्मी को ऑफिस जाना है, भाई को कॉलेज और तुम्हें स्कूल। जल्दी की इस भागमभाग में भी तैयार डबलरोटी से हम सब कितनी जल्दी स्वादिष्ट भोजन प्राप्त कर लेते हैं। है न!

जैसा मजेदार भोजन, वैसी ही इसकी यह मजेदार कहानी। ❑

बिस्कुट की कहानी

बिस्कुट और बच्चे—इन दोनों शब्दों में पुरानी दोस्ती है।

कितनी पुरानी ?

यह ठीक-ठीक तो किसीको नहीं मालूम। पर यह सच है कि आज से तीन सौ साल पहले संसार में कोई बिस्कुट का नाम तक नहीं जानता था।

डबलरोटी का आविष्कार हो चुका था। कई देशों के लोग उसे बनाना सीख गए थे और उसे लेकर यात्राओं पर जाने लगे थे। पर समुद्री जहाज में सीलन के कारण डबलरोटी जल्दी खराब हो जाती थी। खाने लायक न रहने पर वह फेंकनी पड़ती थी। नुकसान होता था और परेशानी उठानी पड़ती थी।

तब लगातार इस बात पर सोच शुरू हुई; तरकीबें भिड़ाई जाने लगीं कि कोई ऐसी चीज बनाएँ, जो जल्दी खराब न हो। वह कई दिन तक रह सके, ताकि यात्रा में काम आए। साथ ही खूब स्वादिष्ट भी हो।

स्वादिष्ट के नाम पर आपके मुँह में पानी आ गया न!

बिस्कुट चीज ही ऐसी है, जो बच्चों, बड़ों, सभी को पसंद है। बड़ों का यह नाश्ता है तो छोटे बच्चों का भोजन। बूढ़ों और बीमारों के लिए तो बिस्कुट भोजन, नाश्ते दोनों का काम देते हैं। आज बाजार में बिस्कुट की न जाने कितनी किस्में हैं—मीठे, नमकीन। नरम, कुरकुरे। मेवे, मिठाई से भरे। केक की तरह खस्ता।

पर हम तो बात उस जमाने की कर रहे हैं न, जब बिस्कुट ही नहीं थे—किस्म-किस्म के कहाँ से होते!

एक दिन एक जहाज के रसोइए ने आटे में घी और शक्कर मिलाया। उसकी गाढ़ी लेई-सी पकाई। उसे डिब्बे में भरकर यात्रा पर साथ ले गया। यह लेई खाने में स्वादिष्ट थी, पर इसमें रोटी, डबलरोटी जैसी ठोस भोजन की बात नहीं बन पाई थी।



अगली बार घोल को इतना गाढ़ा किया गया कि आटे की लेई जैसी बन सके। उसे बेलकर रोटी पकाई गई। इस रोटी को नाम दिया गया 'केबिन ब्रेड'। कई प्रयोग करने के बाद इस रोटी से छोटे-छोटे गोल टुकड़े काटकर धीमी आँच पर पकाए गए। इस तरह जो पहले बिस्कुट तैयार हुए, वे कुछ कड़े थे। फिर उस आटे को डबलरोटी की तरह खमीर उठाकर बेला-काटा गया। अब जो चीज बनी, उसे 'जहाजी बिस्कुट' नाम दिया गया। लेकिन इन बिस्कुटों में भी नमी रह जाती थी और लंबी यात्रा में ये खराब हो जाते थे।

सन् 1735 में इन्हें सही तरीके से पकाने का आविष्कार किया इंग्लैंड के एक चिकित्सक डॉ. ओलिवर ने। डॉ. ओलिवर 'बाथ' नगर के रहनेवाले थे, इसलिए बिस्कुटों का नाम पड़ा—बाथ ओलिवर। ये बिस्कुट पसंद किए गए। प्रसिद्ध हुए और जल्दी-जल्दी, जगह-जगह बिस्कुट पकाने की भट्ठियाँ बनने लगीं। धीरे-धीरे माँग बढ़ती गई। छोटी भट्ठियों की जगह

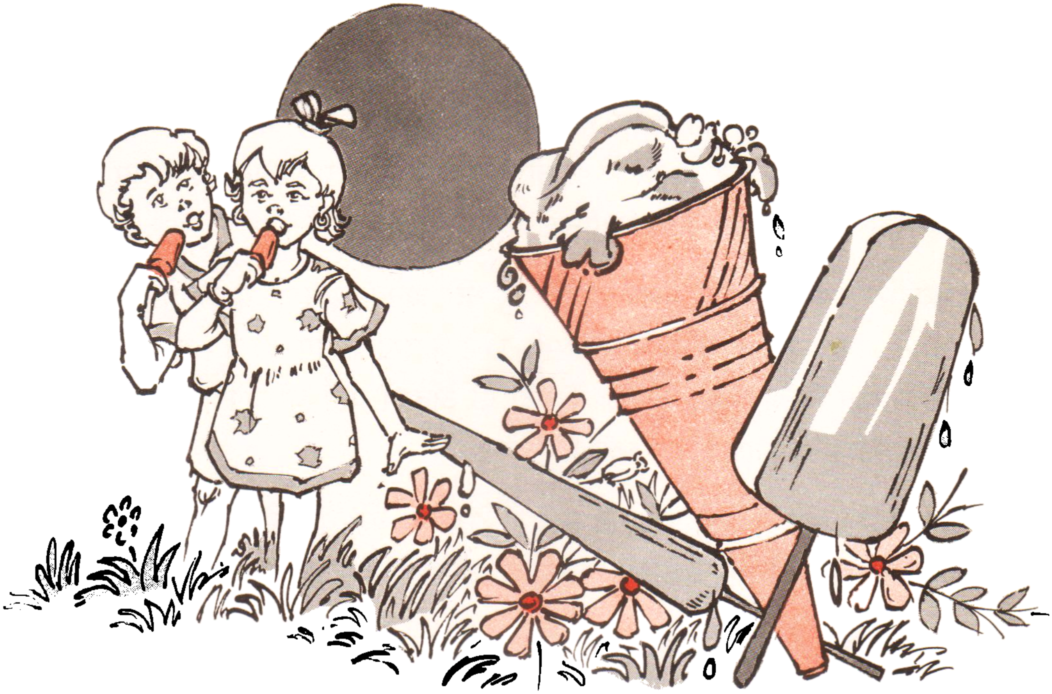
पर दुनिया के किसी भी हिस्से में कोई नई चीज सामने आए, वह देर तक छिपी नहीं रह सकती। सत्रहवीं शताब्दी में यह फ्रांस और यूरोप के अन्य देशों में भी पहुँच गया। फिर घाना, ब्राजील तथा नाइजीरिया 'काकाओ' उगानेवाले अगुआ देश बन गए। और सारी दुनिया में इसका चलन हो गया। मैक्सिको के आदिवासी तो आज तक इसे 'देवताओं का पेय' मानकर श्रद्धा से पीते हैं।



अठारहवीं शताब्दी में स्वीडन के एक वैज्ञानिक ने भी इस पौधे को नाम दिया— 'थिओब्रोमा काकाओ', जिसका अर्थ होता है, देवताओं का खाद्य पदार्थ। शायद इसके स्वाद और सुगंध ने उन्हें इतना मोह लिया था कि वे इसे देवताओं को अर्पित करने के बाद पीने लगे हों। बाद में इसमें मीठा मिलाकर इसे और भी स्वादिष्ट बना लिया गया होगा। तभी तो मैक्सिको में इसे सोने के प्यालों में डालकर शाही मेहमानों को दिया जाने लगा था। उन्होंने ही इसे अपनी भाषा में 'चॉकलेट' नाम भी दिया।

अठारहवीं शताब्दी में जब यह सारी दुनिया का चहेता पेय बन गया तो इसपर अगले प्रयोग हुए। बड़े-बड़े शहरों में चॉकलेट पिलानेवाले होटल तो खुल ही चुके थे। बाद में 'कैडबरी' नाम की एक ब्रिटिश कंपनी ने इसका पाउडर तैयार किया। उन्नीसवीं शताब्दी में इस पाउडर

तेरहवीं शताब्दी में प्रसिद्ध वेनिस यात्री मार्कोपोलो चीन गया। वहाँ उसने सम्राट् के अतिथि के रूप में आइसक्रीम का आनंद लिया। उसे इसका स्वाद इतना अच्छा लगा कि वह इसका फार्मूला पाने की कोशिश में जुट गया। पर सम्राट् ने आइसक्रीम बनाने का फार्मूला गोपनीय रखने का आदेश दे रखा था। इसलिए मार्कोपोलो इसे पाने में सफल नहीं हो पाया।



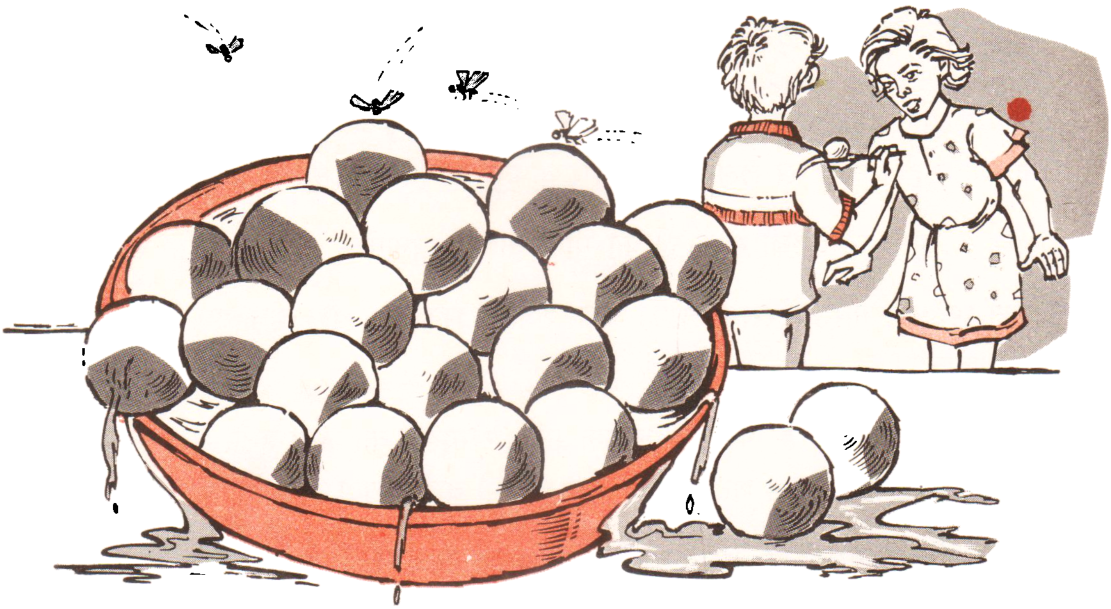
पर जब वह ईस्ट-इंडीज पहुँचा तो वहाँ उसे आइसक्रीम जमाने का रहस्य समझ में आया। एक द्वीप में उसने लोगों को बर्फ पर नमक छिड़ककर उसपर आइसक्रीम का घोल रखते देखा। इस द्वीप पर यह फार्मूला न गोपनीय था, न केवल राज परिवार के लिए सुरक्षित। मार्कोपोलो ने स्वयं आइसक्रीम जमाकर देखी। फिर इटली जाकर वहाँ के सम्राट् को बनाकर खिलाई। सम्राट् ने इसे काफी पसंद किया। पर यहाँ भी यह शाही परिवार के लिए सुरक्षित रख ली गई।

सन् 1533 में जब इटली की राजकुमारी का विवाह फ्रांस के युवराज फ्रांसिस (प्रथम) के साथ हुआ, तो यह फार्मूला इटली से फ्रांस पहुँचा। फ्रांस में भी इसे पसंद करके शाही व्यंजन घोषित कर दिया गया। आम जनता तब भी इससे वंचित रही।

भी इस जैसी ही मजेदार है। लो सुनो—

बाग बाजार में एक तरफ अपर चितपुर रोड पर एक हलवाई की छोटी-सी दुकान थी। उस दुकान के मालिक का नाम था—नवीनदास। उसकी दुकान कोई खास नहीं चलती थी, इसलिए गरीब था बेचारा।

पर दिल का गरीब नहीं था वह। थोड़ी-सी मिठाई बनाता था। बेचने के बाद जो बची रहती थी, उसे शाम को अपने दोस्तों में बाँट देता था, वह भी मुफ्त। बची मिठाई पड़ी-पड़ी बासी हो जाए, खराब हो जाए—इससे अच्छा है, उसके दोस्त ही खा लें। इस तरह उसके दोस्त मिठाई खाकर प्रसन्न रहते थे और वह उन्हें खिलाकर प्रसन्न होता था।

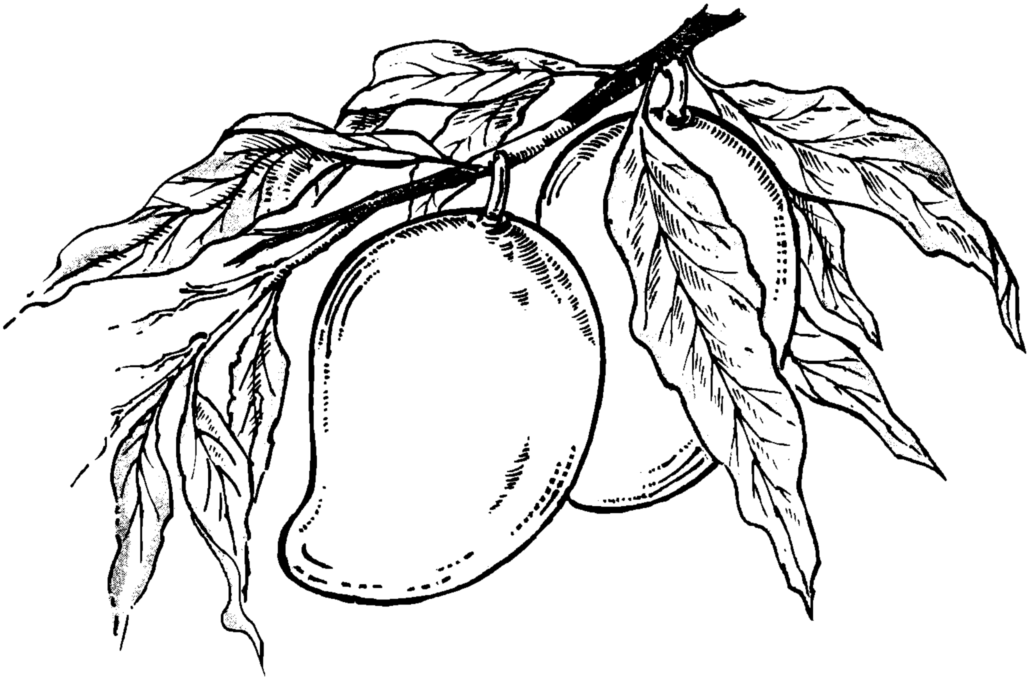


पर इससे उसकी आमदनी तो नहीं बढ़ती थी। बेचारा गरीब-का-गरीब ही रह जाता था। तो उसके दोस्तों को भी चिंता हुई। सब मिलकर दुकान का काम बढ़ाने के उपाय सोचने लगे।

एक दोस्त ने कहा, ''नवीनदास, तुम कोई नई मिठाई बनाओ। ऐसी मिठाई, जो और कहीं न मिलती हो और उसे सब पसंद करें। तुम्हारी दुकान का काम भी बढ़ेगा, एक नई मिठाई का जन्म भी होगा।''

महाभारत में, कालिदास के नाटकों में कई जगह आम्र-कुंज, आम्र-मंजरी आदि शब्द मिलते हैं। इससे पता चलता है कि आम उस काल में भी बहुत लोकप्रिय था। चिकित्साशास्त्र के हमारे सबसे प्राचीन ग्रंथ 'चरकसंहिता' में भी आम के ओषधि-गुण बताए गए हैं।

हमारे इतने पुराने इतिहास में, हमारी इतनी पुरानी संस्कृति में आम सभी जगह मौजूद है। इसलिए हमारी कलाओं में आम के चित्र हैं। हमारे साहित्य में आम के सुंदर वर्णन हैं।

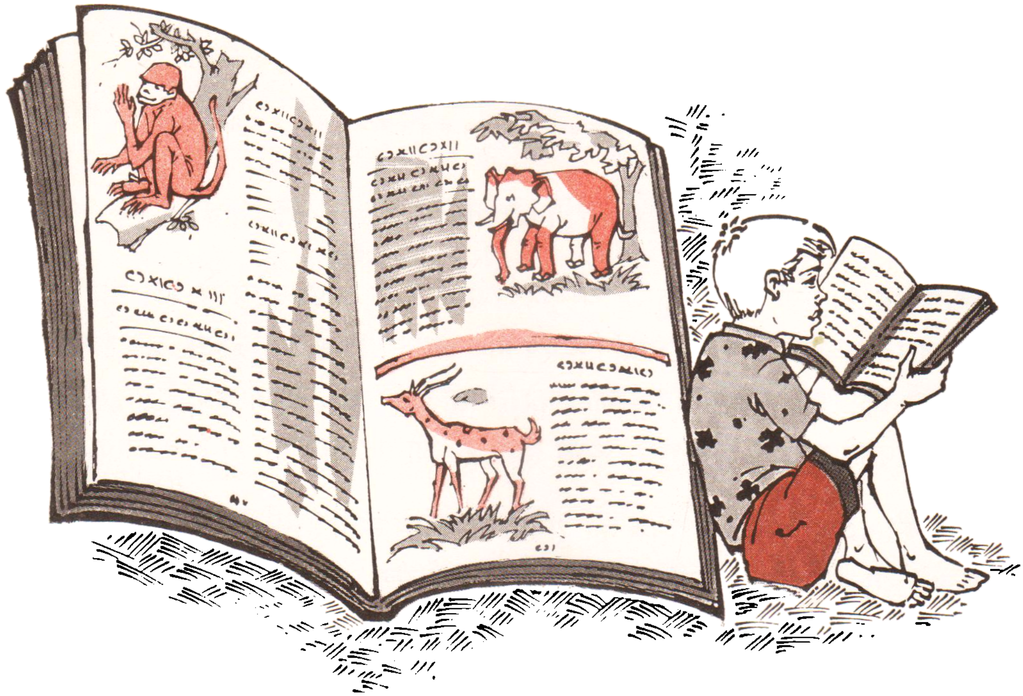


हमारे मंदिरों के धार्मिक उत्सव हों या घरों के मंगल अवसर, दरवाजों पर आम के पत्ते टाँगने का रिवाज है। ये पत्ते पवित्र और मंगलकारी माने जाते हैं, इसलिए पूजा के कलश में भी रखे जाते हैं। फिर आम के बाग-बगीचों में कोयल की 'कू-हू' कैसा समाँ बाँधती है! कितनी भाती है न तुम्हें वह सुरीली आवाज!

जानते हो बच्चो, मुगल काल में आम की बागवानी का खूब विकास हुआ था। राजे-महाराजे, नवाब अपने-अपने शाही बाग रखते थे और उनमें उगाई गई आम की अच्छी किस्मों का शान से प्रदर्शन करते थे। सम्राट् अकबर ने अपने शाही बाग में आम के एक लाख पेड़ लगाए थे। इस बाग का नाम ही 'लक्खी बाग' पड़ गया। उस समय के 'आइने अकबरी' नामक

लो सुनो—

किताब को आज के इस रूप तक पहुँचने में कई मंजिलें तय करनी पड़ी हैं। कागज का आविष्कार हुआ। फिर मुद्रण का आविष्कार हुआ। यह सब एक हजार साल पहले की कहानी है। पर किताब इसके पाँच हजार साल पहले भी थी। केवल इस तरह छपती न थी।



तुम कहोगे, कागज नहीं था तो किताब कैसे थी? ऋषिओं और संतों का दिया हुआ ज्ञान-विज्ञान सुरक्षित कैसे रहा? बच्चो, तब आज की तरह न तो आबादी की इतनी भीड़भाड़ थी, न इतने सारे कामों के पीछे भाग-दौड़। गाँव के आदमी को अपनी जरूरत की हर चीज गाँव में खुद ही तैयार करनी होती थी, क्योंकि आने-जाने के साधन बहुत कम थे। जीवनयापन कठिन था, पर जिंदगी सरल थी। एक साथ बहुत-सी चीजों की तरफ ध्यान न होने से लोगों की स्मरण-शक्ति तेज थी। संतों, भक्तों की वाणियों को उन्होंने याद रख लिया। पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह परंपरा चलती रही। एक-दूसरे से सुनते-गाते लोग सीखते रहे। इसी तरह सारा मौलिक साहित्य आगे बढ़ता रहा।

जिस ज्ञान-विज्ञान को याद रखना कठिन होता उसे लकड़ी की छालों, भोजपत्रों आदि पर

